शोध–प्रभा (ISSN : 0974-8946)
(A REFERRED & PEER- REVIEWED QUARTERLY RESEARCH JOURNAL)

मनु द्वारा प्रतिपादित एवं वर्तमान न्याय व्यवस्था संबंधी विचारों का विश्लेषणात्मक अध्ययन

डॉ. बलबीर सिंह

सहायक आचार्य(राजनीति विज्ञान), जैन विश्व भारती संस्थान (मान्य विश्वविद्यालय)

लाडनूं, नागौर (राजस्थान), पिन–341306

शोध सार

प्रत्येक शासन व्यवस्था जनहित,जन–आकांक्षाओं एवं लोक कल्याण की भावना को आधारभूत मानते हुए अपने उद्देश्यो,नीतियों एवं योजनाओं को क्रियान्वित करती है और किसी संरचना एवं व्यवस्था को अपनाती है।प्रत्येक संरचना अपने कुछ निकायों के माध्यम से जनहित एवं जन–कल्याण करने का प्रयास करती रहती है।जनहित एवं न्यायोचित शासन व्यवस्था के लिए उचित न्याय व्यवस्था का होना आवश्यक है।शासन का रूप चाहे कुछ भी हो न्याय–व्यवस्था उस शासन के आकलन का मुख्य आधार होती है। यदि न्याय व्यवस्था निष्पक्ष है तो उसे शासन व्यवस्था के प्रति लोगों का विश्वास एवं आस्था बनी रहती है, स्थिति यदि इसके विपरीत है तो शासन व्यवस्था के प्रति जनता के मन में अविश्वास एवं असंतोष की भावना को बढ़ावा मिलता है।भारत में प्राचीन काल से लेकर अब तक न्याय व्यवस्था शासन सत्ता का मुख्य आधार रही है। अलग–अलग चिंतकों एवं विचारकों ने न्याय–व्यवस्था के बारे में अपना चिंतन एवं दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है,जिनमें मनु का नाम भी विशेष रूप से लिया जाता है। प्राचीन भारतीय राजनीतिक चिंतन में मनु एक महान चिंतक के रूप में जाना जाते है ।इनके द्वारा प्रतिपादित न्याय व्यवस्था एवं वर्तमान में जो न्याय व्यवस्था के आधार एवं स्वरूप है,उनका तलःस्पर्शी विवेचन करना आवश्यक है।समय एवं परिस्थितियों के अनुसार न्याय व्यवस्था के ढांचे एवं न्यायिक प्रक्रिया में कुछ बदलाव देखे जा सकते हैं जिनका तुलनात्मक विश्लेषण करना मुख्य प्रयोजन है।

मुख्य शब्दः– साक्षी,हिंसात्मक–अपराध,कपटपूर्ण विक्रय,दीवानी मुकदमा ,फौजदारी मुकदमा, आपराधिक प्रवृत्ति,चारित्रिक उत्कृष्टता,वाक–दंड,धिक–दंड,सुधारात्मक–दंड,प्रतिकार–दंड,वादी,प्रतिवादी।

अध्ययन का उद्देश्यः–

- न्याय व्यवस्था को शासन के संचालन का महत्वपूर्ण आधार सिद्ध करना।
- न्याय व्यवस्था की निष्पक्षता को उजागर करना।
- प्राचीन एवं वर्तमान न्याय व्यवस्था के विविध पक्षों का विश्लेषण करना।
- मनु के न्याय व्यवस्था संबंधी विचारों को विश्लेषण करना।
- वर्तमान न्याय व्यवस्था के स्वरूप को स्पष्ट करना।
- न्यायिक प्रक्रिया के विभिन्न पहलुओं का अवलोकन करना।
- प्राचीन तथा वर्तमान दोनों ही परिपेक्ष्य में न्यायिक प्रक्रिया का विश्लेषण करना।

- न्याय व्यवस्था शासन के स्वरूप का निर्धारण करने में महत्वपूर्ण पक्ष है बात को महत्वपूर्ण सिद्ध करना।

अध्ययन पद्धतिः–

उपरोक्त संदर्भ में अध्ययन एवं विश्लेषण करने के लिए तुलनात्मक विश्लेषणात्मक एवं ऐतिहासिक पद्धतियों का सहारा लिया गया है ।इस बारे में विभिन्न पहलुओं का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है एवं पूर्व में इस बारे में उपलब्ध साहित्य एवं स्रोतों का विश्लेषण किया गया है। उपलब्ध साहित्य में विषय वस्तु को संग्रहित कर शोध पत्र के स्वरूप में नवीन एवं सार्थक पहलुओं को समाहित कर विषय की विषय वस्तु को व्यापकता प्रदान करना ।

प्रस्तावना :

प्रत्येक व्यक्ति अपनी आवश्यकता एवं आकांक्षाओं के अनुरूप अपना व्यवहार करता है । जब एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के मामलों में हस्तक्षेप एवं अतिक्रमण करने लगता है,तो उनके बीच विवाद की स्थिति उत्पन्न होने तथा समाज में अभावग्रस्त एवं साधन विहीन समुदाय के कल्याण हेतु समानता को बढ़ावा देने व संसाधनों का वितरण न्यायोचित करने के लिए उचित न्याय व्यवस्था का होना आवश्यक है। न्याय व्यवस्था एक सार्वभौमिक अवधारणा है, जिसका संबंध व्यक्ति,समाज,राष्ट्र और विश्व समुदाय से है।न्याय व्यवस्था अथवा न्यायिक प्रक्रिया एक व्यापक शब्द है जो प्राकृतिक भी है और मानवीय ।न्याय के स्वरूप का अवलोकन विविध पक्षों से होता रहा है। भारतीय संदर्भ में प्राचीन न्याय व्यवस्था एवं वर्तमान न्याय व्यवस्था में भी कुछ साम्यता एवं कुछ विभिन्नता देखने को मिलती है।शोध पत्र मे मनु द्वारा प्रतिपादित न्याय व्यवस्था एवं वर्तमान समय में प्रचलित न्याय व्यवस्था का अध्ययन करना समीचीन है। न्यायाधीशों को नियुक्त करने की प्रक्रिया,समाज में प्रचलित न्यायिक मर्यादाएं, न्यायपालिका के संगठनात्मक–स्वरूप,अपराध एवं दंड प्रक्रिया के विविध पहलुओं का अध्ययन करना आवश्यक है।न्यायिक निर्णय लेते समय न्यायाधीशों के समक्ष से दो पक्ष होते हैं या तो वे विधि द्वारा स्थापित न्यायिक प्रक्रिया की प्रवृत्ति को अपनाते हैं या फिर विधि की उचित प्रक्रिया है उसके अनुरूप अपना निर्णय करते हैं। समय,परिस्थिति एवं राष्ट्र–काल में यह दोनों ही स्वरूप अपनी आवश्यकता एवं प्रावधानों पर आधारित होते हैं।मनु के न्यायिक विचार तत्कालीन परिस्थितियों एवं आवश्यकताओं के अनुरूप औचित्यपूर्ण माने जाते थे और आज भी न्याय व्यवस्था के क्रियान्वयन हेतु उनको आधार के रूप में माना जा सकता है।

न्यायिक शक्ति संबंधी विचार

मनु के अनुसार दंड की व्यवस्था के आधार पर समाज में सद्गुण को बढ़ावा देना एवं बुराई का प्रतिकार करना राजा का मुख्य प्रयोजन माना जाता है इसके लिए उस राजा की प्रभावशीलता तभी उचित मानी जाती है जब वह सभी के साथ निष्पक्ष व्यवहार करता है। अतः मनु ने राजा से अपेक्षा की है कि वह सब जगह है समान व्यवहार करें और नई शक्ति का प्रयोग करते समय प्रिय तथा अप्रिय के बीच कोई भेदभाव न करें इससे उद्देश्य की प्राप्ति तभी हो सकती है जब राजा विवेकी एवं बुद्धिमान हो वही राजा दुर्गुणों की रक्षा करने तथा अपराधियों को दंडित करने में सफल हो पाता

है जो निष्पक्ष एवं अत्यंत पवित्र व्यवहार करते हुए दंड शक्ति का प्रयोग करता है मनु ने न्यायिक सर्वोच्चता की स्थिति का अवलोकन करते हुए राजा को अंतिम न्यायिक शक्ति के रूप में माना है लेकिन राजा भी सर्वोच्च नहीं है बल्कि वह धर्म एवं दंड के अधीन है यदि वह अमर्यादित एवं अवांछित व्यवहार करता है तो वह खुद दंड का भागी होता है इस प्रकार मनु के दर्शन में न्यायिक संप्रभुता की दृष्टि से राजा को सर्वोच्च ने मानकर धर्म एवं दंड को सर्वोच्च माना गया है और राजा स्वयं भी उनके अधीन है वर्तमान स्वरूप में न्यायिक शक्ति राजा के हाथ में न होकर एक न्यायिक नाचे में समाहित की जाती है और वह न्यायिक संरचना ही उसे शक्ति का प्रयोग करती है भारत में इसके लिए संविधान के अनुच्छेद 124 में सर्वोच्च न्यायालय के गठन का प्रावधान किया गया है और एकीकृत न्याय व्यवस्था को अपनाते हुए न्याय का अंतिम केंद्र सर्वोच्च न्यायालय को माना गया है लेकिन न्यायिक संप्रभुता की बात की जाए तो भारत में सर्वोच्च न्यायालय भी संप्रभु नहीं है वह संविधान के प्रावधानों के अनुरूप ही अपनी शक्ति का प्रयोग कर सकता है और संविधान भारतीय जनता का प्रतिबिंब है। अतः संप्रभु के रूप में भारतीय जनता को ही माना जाता है क्योंकि कोई भी न्यायिक सरचना जन आकांक्षाओं एवं जन इच्छाओं के प्रतिकूल व्यवहार करके लोकतांत्रिक व्यवस्था में अधिक समय तक अपने आप को बनाए नहीं रख सकती। मनु के चिंतन एवं विश्लेषण में धर्म एवं दंड को सर्वोपरि माना गया है जबकि भारत में न्यायपालिका की सर्वोच्चता वैधानिक प्रावधानों के अनुरूप है लेकिन संविधान का मुख्य आधार संविधान सभा थी जो कि जनता का ही प्रतिनिधित्व कर रही थी। भारत में संप्रभुता की दृष्टि से जन संप्रभुता का सिद्धांत होने के कारण अंतिम रूप से जनता ही उत्तरदाई रहती है। जनता ही संप्रभु मानी जा सकती है।

नियुक्ति की प्रक्रिया संबंधी विचार :

मनु के दर्शन में भी न्यायाधीशों की नियुक्ति की प्रक्रिया एवं उसकी योग्यताओं का उल्लेख किया गया है और भारतीय संविधान में भी न्यायाधीशों की नियुक्ति की प्रक्रिया एवं योग्यताओं का प्रावधान देखने को मिलता है। मनु ने इस बात पर बल दिया कि न्यायधीश एक विद्वान ब्राह्मण होना चाहिए और इस बात का पक्षपोषण इसलिए किया कि न्यायिक कार्य में नियुक्त व्यक्ति को वेदों,स्मृतियों एवं अन्य शास्त्रों में पारंगत होना आवश्यक है। अतः उसने ब्राह्मण वर्ण को ही न्यायधीश पर नियुक्त करने के लिए वरीयता देने का समर्थन किया।ब्राह्मण वर्ण का योग्य व्यक्ति उपलब्ध न होने की स्थिति में क्षत्रिय को भी न्यायाधीश के पद पर नियुक्त किया जा सकता है। लेकिन उसने समाज के शुद्र वर्ण को नियुक्त करने के लिए निषेध किया है हालांकि मनु के इस विचार की काफी आलोचना भी हुई और इसे कोई न्यायोचित भी नहीं माना जा सकता। मनु ने न्यायाधीशों की नियुक्ति राजा का मुख्य दायित्व माना है। वर्तमान स्वरूप में हम न्यायिक व्यवस्था का अवलोकन करें तो भारत में न्यायाधीशों की नियुक्ति के लिए किसी वर्ग, जाति एवं समुदाय को महत्वपूर्ण न मानकर लोकतांत्रिक प्रक्रिया को अपनाते हुए समाज में कोई भी वर्ण का व्यक्ति जो विधि में पारंगत हो एवं सर्वोच्च तथा उच्च न्यायालय में न्यायाधीश रह चुका हो उसे न्यायधीश बनाया जा सकता है।न्यायाधीशों की नियुक्ति का दायित्व राष्ट्रपति का है जो कि विभिन्न न्यायालयों के न्यायाधीशों को नियुक्त करता है।इस प्रकार न्यायाधीशों की नियुक्ति की प्रक्रिया का हम तुलनात्मक अध्ययन करें तो मनु का दृष्टिकोण एवं चिंतन अलग

स्वरूप में परिलक्षित होता है जबकि वर्तमान में भारत में प्रचलित न्याय व्यवस्था में न्यायाधीशों की नियुक्ति का अलग ही वैधानिक प्रावधान किया गया है। मनु ने न्यायाधीशों की नियुक्ति के लिए राजा को उत्तरदाई माना है और वह अपने मंत्रियों के परामर्श के आधार पर न्यायाधीशों को नियुक्त करता है, जबकि भारत में न्यायाधीशों की नियुक्ति निष्पक्ष एवं लोकतांत्रिक प्रणाली से हो सके इसके लिए कॉलेजियम व्यवस्था का भी प्रावधान किया गया है।

न्यायिक मर्यादा संबंधी विचार

प्रत्येक कार्य की अपनी मर्यादा एवं सीमाएं होती है यदि कोई कार्य मर्यादापूर्वक किया जाए तो उसकी औचित्यपूर्णता बनी रहती है और सफलता के अधिकाधिक अवसर बने रहते हैं। न्याय के क्षेत्र में भी अपनी अपनी मर्यादा होती है अर्थात न्यायाधीशों की अपनी मर्यादायें हैं वे निष्पक्ष एवं भेदभाव पूर्ण न्यायिक प्रक्रिया संपन्न करें। प्रजा की भी मर्यादा है कि वह न्यायाधीशों के दिए गए निर्णय को स्वीकार करें एवं समाज में न्याय व्यवस्था बनाए रखने का प्रयास करें।चाहे शासक हो या फिर प्रजा दोनों ही जगह न्यायोचित्त व्यवहार हमेशा उचित माना जाता है।यदि न्यायाधीश अपनी न्यायिक मर्यादा भंग करता है तो वह अपने कर्तव्य से विमुख हो जाता है और उसके निर्णय को उचित सम्मान नहीं मिल पाता है उसके प्रति समाज में असंतोष उभर कर आता है।मनु ने अपने दर्शन में राजा तथा प्रजा दोनों की ही न्यायिक मर्यादाओं का उल्लेख किया है। उसके अनुसार यदि न्यायाधीश द्वारा उचित निर्णय न किया जाए तो उसको अधर्मी माना जाता है और वह स्वयं दंड का भागी होता है। न्यायिक मर्यादा बनाए रखने के लिए मनु ने यह है विचार दिया कि न्याय सभा में उपस्थित होकर राजा स्वयं ही संपूर्ण न्यायिक शक्ति का प्रयोग नहीं करें उसके अनुसार एक न्याय सभा होनी चाहिए और उस न्याय सभा का सर्वोच्च मुखिया राजा हो सकता है। न्यायिक शक्ति एक व्यक्ति में निहित ने मानकर एक संस्था अथवा संरचना में निहित की है। वर्तमान समय में भी न्यायिक मर्यादा को बनाए रखने के लिए एक सर्वोच्च न्यायाधीश के हाथ में संपूर्ण शक्ति नहीं होती है, बल्कि अन्य न्यायाधीशों का भी न्याय क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान रहता है। किसी भी विवाद के निराकरण हेतु सर्वोच्च न्यायालय का मुख्य न्यायाधीश अन्य न्यायाधीशों अथवा कोई गठित खंडपीठ से विचार–विमर्श करके निर्णय देता है। जहां न्यायिक मर्यादाओं का पालन होता है वहां अच्छे चरित्र,इमानदारी तथा दायित्व बोध स्पष्ट रूप से दिखलाई पड़ता है और जहां न्यायिक मर्यादा भंग होती है वहां न्याय व्यवस्था एवं न्यायिक नियम होने के उपरांत भी समाज में असंतोष एवं अन्याय का बोलबाला देखा जा सकता है।

अपराध एवं दंड व्यवस्था संबंधी विचार

जो भी कार्य नियम अथवा विधि के प्रतिकूल किया जाता है वह अपराध की श्रेणी में आता है।कोई भी व्यक्ति,समूह या संस्था अपने कार्यों से दूसरों की स्वतंत्रता को बाधित करते हैं और अधिकार क्षेत्र को अतिक्रमण करते हैं तो ऐसा कार्य भी अपराध की श्रेणी में माना जा सकता है। प्रकृति एवं प्रभावशीलता के आधार पर अपराधों की अलग–अलग श्रेणियां होती है और जिस प्रकृति का अपराध है उसी के अनुरूप अपराधी को दंड भी देना आवश्यक है। मनु का मानना है कि अपराध के दोष को पहचानते हुए उसी के अनुरूप अपराधी को दंड देना चाहिए। मनु ने विभिन्न अपराधियों के बारे में दंड की मात्रा के निर्धारण के लिए यह महत्वपूर्ण माना है कि अपराध जिस किसी के प्रति किया गया

है और जिस व्यक्ति द्वारा किया गया है उनका स्तर क्या है ? उसी के अनुरूप दंडित करना चाहिए। मनु ने दण्डों के चार प्रकार बतलाए हैं वाक्–दण्ड, धिक–दण्ड,अर्थ–दण्ड तथा भौतिक–दण्ड। मूल रूप से मनु ने अर्थ–दण्ड तथा शारीरिक –दण्ड का ही अलग–अलग रूपों में विवेचन किया है। वर्तमान न्याय–व्यवस्था में भी अपराध की अलग–अलग श्रेणियां बतलाई गई है, उन श्रेणियों के आधार पर ही या तो किसी अपराधी के खिलाफ आर्थिक जुर्माना लगाया जाता है या फिर उसे सजा दी जाती है। कुछ अपराधों के अंतर्गत आर्थिक जुर्माना एवं सजा दोनों का प्रावधान किया गया है।आज भी अपराध की गंभीरता एवं प्रकृति के आधार पर ही अपराधी को दण्ड प्रदान किया जाता है।

न्याय प्रक्रिया संबंधी विचार

राजतंत्र में न्याय करना एवं किसी भी विवाद के बारे में फैसला सुनाना राजा का दायित्व होता था। राजा अपने अधीनस्थ न्यायाधीशों से परामर्श करके किसी भी विवाद अथवा अपराध के बारे में अपना निर्णय सुनाता था। राजा का निर्णय अंतिम एवं सर्वोच्च माना जाता था और उस निर्णय के अनुरूप ही किसी अपराधी को सजा प्रदान की जाती थी। दो पक्षों के बीच विवाद की स्थिति में उस निर्णय को दोनों पक्षों को स्वीकार करना पड़ता था। इस प्रकार प्राचीन–न्याय व्यवस्था के अंतर्गत राजा ही न्याय का सर्वोच्च केंद्र था और उसके निर्णय को सभी को मानना पड़ता था। आज की न्याय व्यवस्था में भी सर्वोच्च न्यायालय का जो मुख्य न्यायाधीश है उसी के निर्णय को दो पक्षों को स्वीकार करना पड़ता है। न्यायिक प्रक्रिया के तहत राजा विधि एवं कानून के अनुरूप ही अपना निर्णय सुनाता था लेकिन यदि किसी विषय पर विधि के अनुरूप निर्णय न लेकर राजा स्वविवेक से भी न्यायोचित एवं प्राकृतिक न्याय के आदर्शों को ध्यान में रखकर अपना निर्णय सुना सकता था। इस प्रकार प्राचीन काल में "विधि की उचित प्रक्रिया" का सिद्धांत न्यायिक प्रक्रिया के अंतर्गत प्रचलित था। लेकिन वर्तमान युग में कोई भी न्यायधीश जो भी निर्णय सुनाता है उसके पीछे इस वैधानिक प्रावधान एवं पूर्व में उसी प्रकृति के अपराध अथवा विवाद के बारे में किसी न्यायाधीश द्वारा दिए गए निर्णय को आधार माना जाता है। भारत की वर्तमान न्याय व्यवस्था के अंतर्गत "विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया"के सिद्धांत को न्यायिक निर्णय करते समय अपनाया जाता है। प्राचीन काल में भी न्यायिक निर्णय एवं न्यायिक प्रक्रिया के अंतर्गत राजा उन पद्धतियों एवं सिद्धांतों को आधार मानता था जो कि समाज के अनुकूल न्यायोचित है अथवा पूर्ववर्ती विवादों के बारे में किस प्रकार का निर्णय लिया गया है। राजा अपने स्वविवेक के साथ अन्य मंत्रियों एवं सलाहकारों से सलाह लेकर भी अपना निर्णय सुनाता था। न्याय व्यवस्था का स्वरूप मनु के काल में भी एकीकृत था और आज भारत में भी न्याय व्यवस्था का स्वरूप एकीकृत पाया जाता है अर्थात अंतिम रूप से राजा सर्वोच्च न्याय का केंद्र था। आज भी हमारे देश में अधीनस्थ न्यायालयों द्वारा दिए गए निर्णयों को अंतिम नहीं माना जाता है बल्कि उनके निर्णयों के खिलाफ न्याय के उच्च केंद्र में अपील की जा सकती है और न्याय का जो सर्वोच्च केंद्र सर्वोच्च न्यायालय है उसी के निर्णय को अंतिम रूप से स्वीकार किया जाता है।

सारांश

किसी भी विषय पर अलग–अलग विचारको का अलग–अलग मत एवं दृष्टिकोण होता है। न्याय व्यवस्था के बारे में मनु के चिंतन तथा वर्तमान में प्रचलित न्याय व्यवस्था के प्रावधानों का

विश्लेषण करने के पश्चात यह तथ्य उभरकर सामने आता है कि न्याय का विचार मानव जीवन के कल्याण, समाज में समानता एवं सुशासन का मुख्य आधार होता है। प्रत्येक शासन सत्ता का अंतिम प्रयोजन होता है कि वह जनता की सहमति,समर्थन एवं औचित्यपूर्णता को प्राप्त कर सके, इस हेतु वह न्यायोचित व्यवहार करने का प्रयास करती हैं और समाज में व्यवस्था बनाए रखना चाहती है। उचित न्याय व्यवस्था से ही इस उद्देश्य की प्राप्ति संभव है।मनु ने भी शासक से अपेक्षा की है कि वह न्यायचित–पूर्ण व्यवहार करें एवं समाज में व्यवस्था बनाए रखने के लिए न्यायपूर्वक अपने निर्णय एवं योजनाओं को क्रियान्वित करने का प्रयास करें।आज भी लोकतांत्रिक व्यवस्था के अंतर्गत शासन सत्ता हमेशा इस बात हेतू प्रयासरत रहती है कि जनता का समर्थन हमेशा उसी को मिलता रहे।वह जन–उत्तरदायित्व की भावना रखते हुए हमेशा समाज में न्यायोचित व्यवहार करने का प्रयास करती है। इस प्रकार मनु तथा वर्तमान न्याय व्यवस्था दोनों ही समानता,स्वतंत्रता,अधिकार सामाजिक–संतोष एवं जनता के प्रति लोक कल्याण की भावना रखना चाहती है और न्याय व्यवस्था में बिना किसी भेदभाव के अपने निर्णय बनाए रखने का प्रयास करती है। मनु के राजनीतिक चिंतन एवं दर्शन की कुछ कमियां उजागर की गई है एवं आलोचना भी की हुई है लेकिन फिर भी वर्तमान परिस्थितियों में भी एक सुयोग्य शासक के लिए मनु के विचारों को आधार माना जा सकता है।

संदर्भ ग्रंथ सूचीः–

1. राजकुमार,प्रमुख राजनीतिक विचारक,अर्जुन पब्लिकेशन, नई दिल्ली (2008)।

2. यादव, डी.एस. राजनीतिक चिंतन का इतिहास,डिस्कवरी पब्लिशिंग हाउस प्राइवेट लिमिटेड, , नई दिल्ली (2012)।

3. सिंह,राजबाला, प्राचीन भारतीय राजनीतिक चिंतक, आविष्कार पब्लिशर्स डिसटीब्यूटर्स, जयपुर (2016)।

4. पाठक, रश्मि, भारतीय राजनीतिक विचारक,अर्जुन पब्लिकेशन, नई दिल्ली (2008)।

5. गहलोत,एन.एस.,भारतीय राजनीतिक व्यवस्था–दशा एवं दिशा,नेशनल पब्लिशिंग हाउस,नई दिल्ली (2004)।

6. गुप्ता, डी.सी. इंडियन गवर्नमेंट एंड पॉलिटिक्स, विकास पब्लिशिंग हाउस,गाजियाबाद (1986)।

7. महला अशोक कुमार, पीकॉक ऑलिव ,भारतीय राज व्यवस्था, अरिहंत पब्लिशिंग हाउस, जयपुर (2012)।

8. मुखर्जी, रविंद्र नाथ,फिलासफी इन इंडियन पॉलिटिक्स, कॉन्सेप्ट पब्लिशिंग कंपनी, न्यू दिल्ली (2005)।

9. मल्होत्रा, ए.पी.,भारतीय शासन और राजनीति, रावत प्रकाशन, नई दिल्ली (2013)।

10. Bhagwan Vishnu Dr- Indian Political Thinkers,Atma Ram and Sons,Gajiyabad. (1996)

11- Resource Book, Good Governance, Book of Change, Bangulru, (2004).